ARYAVART SHODH VIKAS PATRIKA
ISSN No.: 2347-2944, RNI:UPBIL04292,REG.No.:561/2013-14 Vol.-I, No.-1, PP-74-79, YEAR 2013

संस्कृत साहित्य में मानव–मूल्यों की चिन्तन–परम्परा तथा भर्तृहरि

❑ डॉ. कृष्ण चन्द्र चौरसिया

वि व के सभी द र्नों में प्राचीनतम भारतीय द र्न है। वैदिककाल से लेकर आज तक भारतीय चिन्तक ने वैयक्तिक तथा सामाजिक समस्याओं को लेकर ही चिन्तन आरम्भ किया।1 वैदिक साहित्य का प्रारम्भ 'ऋग्वेद' से होता है। भारतीय जनों में यह वि वास प्रचलित है कि सृष्टि के आदि में वेदों का ज्ञान भगवान् ने ऋशियों को दिया था। ऋशियों ने इनके तत्त्वों को जानकर अर्थों का प्रका ान किया। चारों वेदों के प्रका ान के अतिरिक्त चार उपवेद, ब्राह्मण, आरण्यक, उपनिशद्, वेदाङ्ग, अनुक्रमणिका, वृहद् देवता आदि का ग्रहण भी वैदिक साहित्य में किया जाता है। वैदिक साहित्य ही सनातन धर्म का हरिद्वार है यहीं से सनातन धर्म के विचारों की विकास गंगा प्रवाहित होती है। ऋशिगण मात्र वेदों पर ही ध्यानस्थ नहीं हुए अपितु ब्राह्मण, आरण्यक, उपनिशद्,
वेदाङ्ग, द र्न सहित अनेकों
विचार–सारणि–अन्वेशण को हमारे समक्ष उपस्थापित किये। महात्मा बुद्ध आये, भगवान महावीर आये, महर्शि वाल्मीकि आये, आदि भांकराचार्य आये, कबीरदास आये, गुरु नानक आये, तुलसीदास आदि देवदूत आये। आधुनिककाल में स्वामी परमहंस, स्वामी विवेकानन्द.....इत्यादि आये। इन सभी ने राग, द्वेश एवं माह को अमंगलदायक बतलाया है और इन सभी का (दुःख) निरोध बतलाया है। कु ाल क्या है ? उस सम्बन्ध में धम्मपद की आर्शवाणी उल्लेखनीय है –
सब्बपापस्मअकरणं कु ालस्स उप सम्पदा।
सच्चित परियोदनं एतं बुद्धान् भासनं।।2

अर्थात् अक्रोध से क्रोध को जीते, साधुता से असाधुता को जीते, कन्दर्प को दान से और मृशावादी को सत्य से जीते। बौद्धद र्न का यह मंत्र मानवता की उच्चतम प्रतिश्ठा का संस्थापक है।वास्तव में भारतीय दा र्निक चिन्तन का उद्गम एक प्रकार की आत्मिक अ ाान्ति से होता है। संसार में व्याप्त दुःख तथा पाप भारतीय दा र्निकों को अ ाान्त कर देते है, और वे उनके मूल कारणों की खोज में निकल पड़तें हैं। दुःखों से मुक्ति के अपने प्रयास में मानव जीवन के है। भारतीय चिन्तकों का उद्दे य वास्तव में उस मार्ग का तला ा है, जिससे भाान्ति व अमरत्व की प्राप्ति हो। आस्तिक हो अथवा नास्तिक सभी द र्नों का एक मात्र उद्दे य है – मुक्ति अर्थात् दुःखों से मुक्ति। वास्तव में भौतिक दृश्टिकोण से भाान्ति की सम्भावना समाप्त हो जाने पर चिन्तन ाील मानव ने ऐकान्तिक एवं आत्यन्तिक भाान्ति के निमित्त जिस भाास्त्र का उद्भावन किया है, वह द र्न है। योगिराज भर्तृहरि इसी के आधार पर मानव और प ाुओं से भिन्न बतलाया है और भातककाव्य के माध्यम से कर्तव्याकर्तव्य कर्म करने तथा विशय त्याग का उपदे ा
दिया है–

साहित्यसंगीतकलाविहीनः साक्षात्प ाुः
पुच्छविशाणहिनः ।
तृणं न खादन्नपि जीवमानः तद्भागधेयं
परमं प ाुनाम्।।
येशां न विद्या न तपो न दानं ज्ञानं भील
गुणो न धर्मः।
ते मर्त्यलोके भूविनारभूताः मनुश्य रूपेण
मृगा चरन्ति।।3

भारतवर्श में दा ार्निक चिन्तक अतिप्राचीनकाल से बहुत लोकप्रिय रहा है और उनका उद्दे य बौद्धिक जिज्ञासा की तृप्ति मात्र नहीं है अपितु उत्तम जीवन की तला ा है। द र्न भाब्द का अर्थ है, सत्य की अनुभूति। भारतीय द र्न का यह तर्क हमें व्यावहारिक मूल्य, सात्विक मूल्य तथा नैतिक मूल्यों की हेतु को समझने में सहायक हो जाता है

उपनिशद् और मानव मूल्य :–

'उपनिशद्' भाब्द 'उप' तथा 'नि' उपसर्ग सहित सद् धातु से क्विप् प्रत्यय करने पर निश्पन्न होता है । यहाँ सद् धतु का अर्थ ना ा, गति, एवं ि ाथिल करना के अर्थमें स्वीकार गया है–

''सदेर्धातोर्वि ारणगत्वसादनार्थस्योपनिपूर्वस्य क्विप् प्रत्ययान्तस्य रूपमुपनिशदिति।'' उपनिशद् वह आध्यात्मिक विद्या है; जिसके अध्ययन से अविद्या का

असिस्टेंट प्रोफेसर–संस्कृतविभाग, श्री भगवान महावीर पी. जी. कालेज पावानगर
फाजिलनगर, कु ाीनगर (उ0प्र0) भारत

का क्षय हो जाता है । अक्रोध से क्रोध को जीते, साधुता से असाधुता को जीते, कन्दर्प को दान से और मृशावादी को सत्य से जीतने का भान हो जाता है। यह निर्विवाद सत्य है कि मनुश्य को आत्यान्तिक भाान्ति, काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मात्सर्य इत्यादि बाह्य भोगों से कदापि प्राप्त नहीं हो सकती है। आत्यन्तिकभाान्ति हेतु उस सर्वान्तर्यामी, सर्वाधिपति, अलौकिक भाक्ति परब्रह्म परमात्मा की भारण लेनी पड़ेगी जो इस जगत् का मूलाधार है। इसका निर्णय करने वाले अनादि काल से चले आने वाले वेद हैं। वेद का भीर्शस्थानीय भाग का नाम 'उपनिशद्' है। उपनिशद् को वेदान्त भी कहते है। वेदान्त ही ब्रह्म विद्या है, यह ब्रह्म विद्या ही सर्वत्र समभाव का दिग्द ान करती है, इस ब्रह्म विद्या के द्वारा ही प्राणी मात्र के अन्तः स्थल में व्याप्त अज्ञान की ग्रन्थियां कटती है। ब्रह्म विद्या से ही मन की चंचलता एवं इन्द्रियों की एकाग्रता ही नहीं होता है अपितु मन की चंचलता एवं दुश्ट इन्द्रिया का भी दमन होता है। ब्रह्म विद्या से ही मिथ्यानुभूति का विना ा होकर परमानंद परमे वर के व्यापक स्वरुप की उपलब्धि होती है। प्रोफेसर जीड भी कहते हैं कि इस अवस्था में व्यक्ति की सभी भांकाये मिट जाती हैं और सभी धारणाएं स्पश्ट हो जाती है। व्यक्ति का विवेक इस प्रकार विकसित हो जाता है कि कि श्रेयस् और प्रयस् का भेद सहज हो जाता है। व्यक्ति द्वारा किया गया कार्य चाहें वह अपने लिए किया गया है अथवा दूसरों के लिए, वह श्रेयस् ही होगा। ऐसा व्यक्ति भारीर को स ाक्त बनाता है परन्तु दूसरों की पीड़ा देने के लिए नहीं अपितु अपना कर्तव्य सुचारु रुप से कर सकने के लिए है। वह मनोगम्य ज्ञान प्राप्ति करता है परन्तु प्रकृति और समाज भोशण करने के लिए नहीं अपितु एक सच्चे मानव जीवन के रुप में जीवन बिता सकने के लिए।3 तैत्तिरीयोपनिशद् में मानव को सलाह दी गई है कि हित तथा कल्याण की उपेक्षा मत करना। आत्महित भी जीवन का एक महत्वपूर्ण पक्ष है। व्यक्ति का यह कर्तव्य है कि वह वे सभी कार्य करें जो उसे आत्मोन्नति की ओर ले जाएं। यदि व्यक्ति का अपने निमित्त किया गया कोई कार्य जनहित के विरुद्ध है तो नि ित रुप से वह आत्मोन्नति के लिए उचित हो ही नहीं सकता क्योंकि आत्मा सभी में व्याप्त है –'ई ावास्यमिदं सर्वं यत्किंचजगत्यां जगत्'। 4

अर्थात– सारा जगत् ब्रह्म का विवर्त है। जिसे विज्ञानामानन्दं ब्रह्मं, सत्यं ज्ञानमानन्तं ब्रह्मं, ब्रह्मं सत्यं जगन्मिथया, एको ब्रह्म द्वितीयो नास्ति इत्यादि कहा गया है। यह अद्वितीय, सनातन, अनादि, चैतन्य, कूटस्थ, नित्य, निश्क्रिय, अजर–अमर आदि है। एतादृ ाः उपनिशद् ज्ञान व्यक्ति को स्वतः ही मानव मूल्यों कि प्रकाश्ठा की ओर लेता चला जाएगा, क्योंकि उपनिशदों में ब्रह्म ज्ञान को एक अद्भुत भाक्ति के रुप में माना गया है, चाहें वह आत्मज्ञान हो अथवा प्रकृति सम्बन्धित हों–

पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात्पूर्णमुदच्यते।
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावि ाश्यते।।

श्रीमद्भगवद्गीता और मानव–मूल्य– भारतीय परम्परा के अनुसार गीता का उपनिशदों का सार तत्त्व माना गया है, तथापि कुछ आधुनिक लेखको ने इसे विविध वैचारिक प्रवृतियों का सम्मिश्रण बताया है। वैचारिक प्रवृतियों में बाहरी विविधताओं के बावजूद गीता व्यावहारिक मूल्य को प्रदि ात करता है। हमारा जीवन मानसिक दबाओं व तनाओं से भरा पड़ा है। यह पीड़ा, व्यथा, विशाद, क्ले ा इत्यादि से आक्रांत है। किसी भी परीक्षा की घड़ी में हम विरोधी आवेगों के मध्य लड़खड़ा जाते है और यह नि चय नहीं कर पाते कि कौन सा मार्ग अपनाएं अथवा क्या करें ?वास्तव में मनुश्य की समस्या यह है कि जब परस्पर विरोधी आवे ा हमारे समस्त प्रयत्नों को गतिहीन व अ ाक्त कर दें और अपने आप को पूर्ण अनि चय की स्थिति में पायें तो उस अवस्था में एक संतुलित जीवन कैसे बिताएं?कैसे अपनी बुद्धि व मानसिक भाान्ति को बनाएं रखें?भोक व पीड़ा आदि को किस प्रकार भाान्तिपूर्वक सहन करें, परीक्षा के क्षणों में किस भाान्ति, ईमानदारी से अन्तः करण की आवाज के अनुकूल कार्य करें?कैसे नि ित करें कि हमारा कर्त्तव्य क्या है?अर्जुन एक अत्यन्त विशम समस्या में उलझा हुआ है और वह उक्तानुक्त नि चय नहीं कर पा रहा है। उस अवस्था में उसके मनोभाव, अनुभूति, प्रतिश्ठित परिपाटी व परम्पराएं और यहां तक कि जिसे हम बुद्धिमतापूर्ण निर्णय कहते हैं वह भी उसके कार्य प्रतिकूल सलाह दे रहें हैं। ऐसी स्थिति में वह धर्मपरायणता या न्यायसंगता से कैसे कार्य करें?इस समस्या को हल करने के मार्ग पर चलते हुए श्रीमद्भगवद्गीता मानव–जीवन से सम्बन्धित लगभग प्रत्येक समस्या का समाधान है। गीता सभी मानव–बुराईयों के उत्कृश्ट समाधान के लिए इसकी निश्काम कर्म की संस्तुति सभी व्यक्तियों के लिए है और बिना किसी धार्मिक अथवा सांस्कृतिक सम्बन्ध का ध्यान रखें सभी मानव सन्दर्भों में प्रभावी है।

जैनद ान और मानव–मूल्य– मानव मूल्यों की दृश्टि से जैन द ान एक अति समृद्ध द ान है,

जिसके अनुसार ि ाक्षा केवल ज्ञानार्जन ही नहीं अपितु व्यक्ति के जीवन के गहन रुप से सम्बन्धित एक कठोर अनु ाासन है। जैनद ान के अनुसार वास्तविक ज्ञान केवल वही है, जो व्यक्ति को सत् जीवन की ओर अभिप्रेरित करता है। वह सभी ज्ञान ि ाक्षा है जो व्यक्ति को सत्चरित्र की ओर प्रेरित करता है। सभी सम्प्रदायों के धर्मग्रन्थों में मानव जीवन को दुर्लभ और अनूठा बताया गया है। अतः जीवन के एक–एक पल का सदुपयोग करने में ही मनुश्य जीवन की सार्थकता है। अन्य भारतीय द ानों के समान जैन द ान में भी ि ाक्षा का अन्तिम लक्ष्य व्यक्ति को मुक्ति की ओर प्रवृत्त करता है। जैनद ान की यह मान्यता है कि आत्मा तथा पुद्गल के बीच भेद न करके उन्हे एक मान लेना ही बन्धन का कारण है और इसका वियोग मोक्ष है। प्रत्येक व्यक्ति में कुछ कुवृत्तियां होती है, जिन्हें 'कशाप' कहा गया है, जैसे– क्रोध, मान, माया, लोभ इत्यादि। इन वृत्तियों की सक्रियता हमारे अज्ञान पर निर्भर है। आत्मा तथा अनात्म द्रव्यों का यथार्थ ज्ञान न होने के कारण ही हमारे मन में कशाप नामक प्रवृत्ति उभरती है। वास्तविक ज्ञान के द्वारा सभी कशाप धुल जाते हैं। ऐसे ज्ञान को जैन द ान सम्यक् ज्ञान कहता है। आत्मा और अनात्मा, सत् एवं असत् के बीच सम्यक् ज्ञान भेद स्पश्ट करता है। निस्सन्देह सम्यक् ज्ञान एक अच्छे जीवन का मार्ग प्र ास्त करता हुआ मानव–मूल्य को उपस्थित करता है। सम्यक् ज्ञान की प्राप्ति के लिए आगम (ज्ञान) तथा गुरु के प्रति श्रद्धा आव यक है। इसी श्रद्धा को सम्यक् द ान कहा गया है। इसके अनुसार सम्यक् ज्ञान तथा सम्यक् द ान का समाहार सम्यक् चरित्र में होना आव यक है, अन्यथा ज्ञान तथा श्रद्धा का कोई औचित्य नहीं रह जाता है। अहित कार्यों का निवारण तथा हित कार्यो का आचरण सम्यक् चरित्र कहलाता है । इसके लिए पंचमहाव्रत –सत्य अहिंसा, अस्तेय,ब्रह्मचर्य तथा अपरिग्रह और दस गुणधर्म – क्षमा, मार्दव(कोमलता), सत्य, आर्जव (सरलता), संयम, भाौच (मन तथा भारीर की भाुदृता), तप त्याग, अममत्व तथा ब्रह्मचर्य का ग्रहण आव यक है। जैनद ान के अनुसार जगत् के समस्त प्राणी अपने–अपने संचित कर्मों के कारण ही संसार का परिभ्रमण करते है और इन्हीं के अनुसार विभिन्न योनियों में जन्म लेते हैं। आवागमन से मुक्ति पाने के लिए व्यक्ति को पूर्व जन्मों के संचित कर्मों के फलों का ना ा करना चाहिए। जैनद ान कर्मों के प्रवे ा को रोकने के लिए 10 धर्म, 12 अनुप्रेक्षाएँ, 3 गुप्तियाँ, 5 समितियाँ, 22 परिशह, 5 चारित्र सहित 62 काव्यकारों ने उपजीव्य बनाया है।

बौद्धद ान और मानव मूल्य :– जैन द ान तथा बौद्ध द ान दोनों ही द ान यद्यपि नास्तिक द ान माने गये है क्योंकि ये वेदों की सत्ता को स्वीकार नहीं करते, किन्तु इन दोनों द ानों ने एक अच्छे जीवन की कल्पना की है । ये दोनो ही द ान सत् जीवन का मार्ग प्र ास्त करने का प्रयत्न करते है।जैन तथा बौद्ध ने जीवन को एक यथार्थ स्तर पर अनुभव किया। महात्माबुद्ध ने नैतिक जीवन को ि ाक्षा का एक प्रमुख लक्ष्य माना और जीवन के हर पक्ष में चरित्र–निर्माण पर जोर दिया, जिसका सम्बन्ध मानव मूल्यों से गहन रुप से जुड़ा हुआ है। वास्तव में मानव–मूल्य व्यक्ति व विकास के अन्तर्गत समाहित है। महात्मा बुद्ध द्वारा दिया गया अश्टांगिक मार्ग सत् जीवन का ही मार्ग है, व्यक्तित्व विकास का सोपान है। सम्यक् दृश्टि, सम्यक् संकल्प, सम्यक् वाक्, सम्यक् कर्म, सम्यक् आजीविका, सम्यक् व्यायाम, सम्यक् स्मृति, सम्यक समाधि – ये अश्टांगिक मार्ग जीवन को सन्मार्ग दिखलाते है। 'मध्यम–प्रतिपदा' तथा प्रतीत्यसमुत्याद सिद्धान्त– ये दो बौद्ध द ान के अन्तर्गत समाहित है, जो हमारे जीवन में मार्गद ान सिद्धान्त का कार्य करते है। मध्यम प्रतिपद सिद्धान्त व्यक्ति को किसी भी क्षेत्र में 'अति' से बचाता है। बौद्धद ान में तप, ब्रह्मचर्य, आर्यसत्य का द ान, निर्वाण का साक्षात्कार– ये सब उत्तम मंगल है। उन्होंने राग, द्वेश एवं मोह को अकु ाल का मूल स्वीकार किया है, इस सम्बन्ध में धम्मपद की
यह आर्शवाणी उल्लेखनीय है–

सब्बपापस्मअकरणं कु ालस्सउपसम्पदा।
सच्चित परियोदनं एतं बुद्धान् भाासनं।।5

अर्थात् अक्रोध से क्रोध को जीते, साधुता से असाधुता को जीते, कदर्प को दान से और मृशावादी को सत्य से जीते। वास्तव में यह बौद्धद ान मानव–मूल्य की उच्चतम प्रतिश्ठा है, जिसे उत्तरवर्ती काव्यकारों ने उपजीव्य बनाया है। बौद्धद ान मूलतः दुःखवादी है। यह बार–2 सर्वं दुःखम्' अर्थात् 'सब दुःखमय है' नामक वाक्य को दुहराता रहता है और मानव का सर्वप्रथम लक्ष्य इन दुःखों से मुक्ति पाने का आदे ा भी देता है। महात्मा बुद्ध उसके मुक्ति का मार्ग भी बताया है। मानव चार आर्य सत्य तथा अश्टागिंक मार्ग के द्वारा ही दुःखों से मुक्ति प्राप्त करता है। यहाँ चार आर्यसत्य है–दुःख, दुःख समुदाय, दुःख निरोध तथा दुःख निरोध गामिनी प्रतिपद है। बौद्धद ान के चार आर्य सत्यों में दुःख

है। जन्म भी दुःख है, जरा भी दुःख है, व्याधि भी दुःख है, मृत्यु भी दुःख है .....।6 इस प्रकार स्पश्ट है कि दुःख संसार में सर्वाधिक सत्य है और मानव जीवन का सर्वप्रथम लक्ष्य उससे मुक्ति प्राप्त करना है।

बौद्धद र्ान का द्वितीय आर्य सत्य दुःख का मूल कारण दुःख–समुदाय है महात्मा बुद्ध के अनुसार दुःख का मूल कारण तृश्णा है जो प्राणी को एक दूसरे जन्म चक्र में भरमाती रहती है। तृश्णा पुनर्भव को करने वाली, आसक्ति और राग के साथ चलने वाली है। महात्मा बुद्ध तृश्णा के साथ–साथ अविद्या को भी दुःख का मूल कारण स्वीकार किया। अब आप चिन्तन कीजिए ये दोनों जिसके पास हो, उसकी क्या स्थिति होगी। वह व्यक्ति चेतनयुक्त होते हुए भी विवेक ून्यता की स्थिति में संचरण करता है। सम्प्रति वह भौतिकवादिता को ही यथार्थ मान बैठता है और उसे सम्पूर्ण जगत् सत्य प्रतिभान होने लगता है। भारीर और मन से अपना तादात्म्य स्थापित कर लेता है तथा नाना प्रकार के स्वार्थपूर्ण कर्मों में अभिरत होता रहता है। महात्मा बुद्ध स्वयं कहते है– 'हे भिक्षुओं! संसार अनादि है। अविद्या से आछन्न और तृश्णा से आबद्ध एक जन्म से दूसरे जन्म को दौड़ते हुए जीवों की पूर्व कोटि पता नहीं चलती है'। महात्मा बुद्ध को दुःख का कारण अविधा से माना है। अविद्या बुराई कैसे उत्पन्न करती है। यदि हम एक बार उत्पत्ति की इस प्रक्रिया को जान लें तो उसका जो फल होता है उससे बचने के राजयोग को हम पकड़ लेंगे। महात्मा बुद्ध स्चयं इसके उदाहरण है और इनका द र्ान संसार तट से निर्वाण के तट तक ले जाने वाला एक सेतु है। यहाँ ध्यातव्य है कि जब राजकुमार सिद्धार्थ तरुण हुए तब वे संसार से कुछ विरक्त तथा अधिक विचारमग्न रहने लगे। इसे देखकर भाुद्धोदन डर गये कि कहीं मेरा बच्चा साधुओं के संसर्ग में आकर घर से बेघर न हो जाय। अतः उनके पिता ने कोलिय गणतन्त्र की राजकुमारी य ाोधरा से विवाह कर दिया। विवाह के कारण सिद्धार्थ कुछ दिन और घर ठहर गये। इसी बीच उन्हे एक पुत्र रत्न की प्राप्ति हुई। महात्मा बुद्ध पुत्र को अपने मार्ग का रोड़ा (राहु) समझकर 'राहुल' नाम दिया। जगत् से अ ाान्ति राजकुमार गौतम अनेक वर्शो तक को ाल और मंगल के जंगलों में भटकते रहे। एक दिन इनका आचार्य आराड़कलाम से साक्षात्कार हुआ। आराड़कलाम ने सिद्धार्थ को ध्यानयोग की दीक्षा दिया। राजकुमार ने ध्यान की 7वीं सीढ़ी 'अकिंचन आयतन' तक अभ्यास कर उसमें श्रेश्ठता हासिल कर ली। फलतः भोग–विलास, जन्म, य ा, रोग, मृत्यु, दुःख, अपवित्रता इत्यादि से इतने अधिक प्रभावित हुए कि वे अपना ध्यान इस ओर से हटाकर आत्म कल्याण कृते संकल्प लिया। महात्मा बुद्ध के अनुसार अविद्या, संस्कार (कर्म), विज्ञान (चेतना), नामरूप (मन एवं भारीर), ाड़ायतन (पंचेन्द्रिय और मन), स्प र्ा (इन्द्रियों और विशयों का सम्पर्क), वेदना (इन्द्रियज्ञात), तृश्णा (इच्छा), उपादान (सांसारिक पदार्थों का राग), भव (अस्तित्व), जाति (संसार में जन्म तथा जरा–मरण– ये बारह अविद्या दुःख को उत्पन्न करते है; जिसका तृतीय आर्य सत्य से निरोध बतलाया है। तृतीय आर्य सत्य दुःख निरोध से ही निर्वाण की अवस्था प्राप्त होती है–''निर्वाण भाान्तम्''7 दुःख निरोध किस मार्ग के अनुसरण से किया जाय, इसे बुद्ध ने चतुर्थ आर्य सत्य दुःख निरोध गामिनी प्रतिपद से बतलाया है। इसके लिए महात्मा बुद्ध ने अश्टागिंक मार्ग का द र्ान दिया। यह अश्टागिंक मार्ग मानव की पूर्ण मानवता का द्योतक है। जिसके अन्तर्गत सम्यक् दृश्टि, सम्यक संकल्प, सम्यक वाणी, सम्यक कर्मान्त, सम्यक जीविका, सम्यक स्मृति, सम्यक् व्यायाम और सम्यक समाधि निहित है। महात्मा बुद्ध ने इन अश्टागिंक मार्ग में भी सम्यक दृश्टि, सम्यक संकल्प, सम्यक वाणी को प्रज्ञास्कन्ध; सम्यक कर्मान्त तथा सम्यक आजीव को भीलस्कन्ध; सम्यक व्यायाम, स्म्यक स्मुति तथा सम्यक समाधि को समाधिस्कन्ध कहा है। प्रज्ञास्कन्ध, भीलस्कन्ध तथा समाधिस्कन्ध क्या है ?से सनातन धर्म के आश्रमव्यवस्था ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ तथा संन्यास है। यही नहीं, महात्मा बुद्ध ने मानव की पूर्ण मानवता रुपी अश्टागिंक मार्ग की सफलता के लिए 10 भील अहिंसा, सत्य, अस्तेय, अपरिग्रह, ब्रह्मचर्य, असमय योजन का त्याग, सुगन्धित द्रव्य का परित्याग, संगीतादि का त्याग, कामिनी–कांचन का त्याग तथा महार्द्य ाय्या (कोमल– ाय्या) का परित्याग भी बतलाया है। बौद्धद र्ान कर्मवाद की सत्ता को स्वीकार करता है किन्तु वेदों की प्रामाणिकता, यज्ञ, बलि इत्यादि में अवि वास करता है। आत्मा और ई वर के अस्तित्व के प्रसंग में महात्मा बुद्ध मौन धारण कर लेते थे, किन्तुनिर्वाण की सत्ता को स्वीकार करते थे–

यत्थ आपो च पठवी तेजो वायी न गाधति।
अतो सरा निवत्तन्ति एत्थ वटं य वट्टति ।।8

अर्थात् निर्वाण वह है जहाँ पृथ्वी, जल, तेज, वायु तत्त्व की पहुँच नहीं है। जहाँ तारकादि द्योतित नहीं होते है। वहाँ आदित्य प्रका ित नहीं होता है। वहाँ चन्द्रमा नहीं चमकता है। वहाँ अन्धेरा भी नहीं है।

अवस्था निर्वाण है यहाँ आस्रव, एशणाएँ, राग–द्वेश, मोह, तृश्णा, धर्म–अधर्मभाव, नामरुप, जातिरुप, संस्कार इत्यादि सभी का निरोध हो जाता है।

भर्तृहरि और मानव मूल्य :– लगभग दो सहस्र वर्श पूर्व मध्य भारत (प्राचीन समय में राजपुताना) के मालवा प्रान्त की उज्जयिनी नगरी में नीतिकु ाल, न्यायपरायण, प्रजावत्सल, सर्वगुण सम्पन्न भर्तृहरि राज्य करते थे। जिसे आजकल उज्जैन कहते है। उज्जैन ि ाप्रा नदी के तट पर बसा हुआ है।9 कूर्मपुराण में इसे ि ाप्रा नाम दिया गया है। पौराणिक विचारधारा के अनुसार इस नदी की उत्पत्ति ि ाप्र नामक सरोवर से हुई है। जब व ि ाश्ठ ने अरुन्धती से विवाह किया तो ब्रह्मा–विश्णु–महे ा ने उन्हें भाान्ति, जल और आ ि ावाद दिया। उसी भाान्ति–जल से ि ाप्र सरोवर नित्य समृद्धि को प्राप्त करता रहा। बाद में विश्णु ने चक्र द्वारा उसके आस–पास के गिरि श्रृगं को काट कर उस सरोवर की प्रवृद्ध जलरा ि ा को पवित्र नदी के रुप में पृथ्वी पर प्रवाहित किया। अतः ि ाप्रा सरोवर से निकलने से इसका नाम ि ाप्रा प्रसिद्ध हुआ। यहॉ आज भी भर्तृहरि गुफा अव ोश रुप में स्थित है।10 भर्तृहरि के छोटे भाई विक्रम प्रधानमंत्री का काम करते थे। राजकुमार विक्रम अपनी कु ााग्र बुद्धि और राजनीतिज्ञता से सारे काम सुचारु रुप से चलाते थे।

महाराज भर्तृहरि की दो या तीन भाादियां हो चुकी थी, फिर भी भर्तृहरि ने किसी दे ा की एक अपूर्व सुन्दरी राजकुमारी से भाादी कर ली। महारानी का नाम पिगंला था। महारानी पिगंला के असाधारण रुपवती होने के कारण महाराज उनके रुप पर ऐसे मोहित हुए कि अपनी सम्पूर्ण विद्या, बुद्धि, विवेक और विचार प्रभृति को ताक पर रखकर उनके क्रीतदास हो गये। महारानी पिंगला जो चाहती थी, वही महाराज से करा लेती थी। महाराज भी रानी पिंगला के इच्छानुसार चलते थे। महारानी पिंगला स्वच्छन्द विहारिणी परपुरुशरत थी। एक दिन विक्रमादित्य को पता चला। विक्रम ने भाई को मोहपा ा से बचाने के लिए अनेक प्रयत्न किये, परन्तु इसका परिणाम विपरीत रहा। पिंगला ने विक्रमादित्य के विरुद्ध ाडयन्त्र रचकर राज्य से बहिश्कृत करा दिया।

नगर का एक दरिद्र ब्राह्मण अपनी इश्ट–सिद्धि के लिए वन में जाकर किसी देवता की तपस्या करता था। तप कश्ट से जब उसका भारीर एकदम कृ ा हो गया, तब देवता का आसन हिला। उसने ब्राह्मण के सामने स ारीर आकर उससे कहा– इसलिए तुझे यह 'फल' देता हूँ। यह 'अमरफल' है। इसके सेवन से मनुश्य अमरत्व एवं मनोवांछित यौवन को प्राप्त कर सकता है।

ब्राह्मण इस अमरफल को लेकर अपने घर आया और उस फल का सारा वृतान्त ब्राह्मणी को सुनाया। ब्राह्मणी बोली हे नाथ! घर में प्रत्येक वस्तु का आभाव है। धन बिना समाज में प्रतिश्ठा कहाँ?दरिद्र देह धारियों को परम दुःख और अपमान है। अतः यह फल उनके लिए अच्छा, जिन्हे परमात्मा ने धन–रत्न दिये है। एतादृ ाः यह फल महाराज भर्तृहरि को दीजिए। ब्राह्मण राज के दरबार में उपस्थित होकर अमरफल की वि ोशता बतलाया तथा राजा भर्तृहरि को अमरफल दे दिया। राजा ने भी उसे खु ाी से स्वीकार कर लिया और ब्राह्मण को कई लाख स्वर्ण मुद्रा देने का आदे ा दिया।

अब महाराज भर्तृहरि मन ही मन विचार करने लगें कि अगर मैं इसे खाऊँगा तो सदा अमर रहूँगा, मेरा रुप यौवन सदा स्थिर रहेगा, दुःखदायी बुढ़ापा पास न आयेगी; परन्तु मेरी प्राणप्रिया पिंगला कुछ दिन बाद बूढ़ी हो जायेगी। उसका रुप–लावण्य नश्ट हो जायेगा। उस द ाा में, मैं किसके साथ सुंखोपभोग करुंगा?इसलिए राजा ने वह फल पिंगला को दे दिया। पिंगला ने भी वही सोचकर उस अमरफल को वह स्वयं न खाकर अपने प्रेमी सेनापति अस्तबल दरोगा को दिया, क्योंकि वह उसे प्राण से अधिक प्यार करती थी। वह सेनापति ने अपनी प्रेमिका वे या को दे दिया। उसके जाते ही वे या सोचने लगी कि यदि मैं इस फल को खाऊँगी तो अनन्त काल तक इसी तरह पापों की गठरियाँ बटोरती रहूँगी। एतादृ ाः वे या के हृदय में राजा भर्तृहरि के प्रति अत्याधिक सम्मान एवं प्रेम था अतः उसने उस प्रदत्त फल को भतृहरि को समर्पित कर दिया। ई वरेच्छा अमरफल पुनः राजा के पास पहुँचा। राजा ने अनुसंधान द्वारा सारा भेद जान लिया। उन्हे पिंगला के छलछिद्रयुक्त कपट–व्यवहार पर बड़ी घृणा उत्पन्न हो गयी। उन्हें अपनी सबसे अधिक प्यारी रानी के दुर्व्यवहार और वि वासघात से बड़ा दुःख हुआ। उन्हे संसार से विरक्ति हो गई क्योंकि इन्होंने सभी को धिक्कारते

हुए लिखा –

यां चिन्तयामि सततं मयि सा विरक्ता
साऽप्यन्यमिच्छति जनं स जनोऽन्यसक्तः।
अस्मत्कृते च परितुश्यति काचिदन्या

अर्थात् मैं जिसको सदा चाहता हूँ, वह मेरी प्रिया पिंगला मुझे नहीं चाहती, वह दूसरे पुरुश (सेनापति) को चाहती है; वह सेनापति रानी को नहीं चाहता है, सह दूसरी ही स्त्री एक वे या से प्रेम करता है। इस वे या के हृदय में राजा भर्तृहरि के प्रति अत्यधिक सम्मान एवं प्रेम था। इसलिए रानी को धिक्कार है। उस सेनापति को धिक्कार है। उस वे या को धिक्कार है। मुझको धिक्कार है और उस कामदेव को धिक्कार है जो ये सब काण्ड कराता है।

इस घटना से संसार महाराज के लिए बिल्कुल ही असत्य मालूम होने लगा। उन्होंने अपनी राजसी पो ाक त्याग दी और सारा राज–पाठ, धन–दौलत प्रभृति एक क्षण में त्याग कर वैराग्य का रास्ता अपनाया। वन में घोर तपस्या के परिणाम स्वरुप ज्ञान की प्राप्ति होती है, क्योंकि भर्तृहरि ने स्वयं लिखा है–

यदासीदऽज्ञानं स्मरतिमिरसंचारजनितं
तदा सर्वं नारीमयमिदम ेशं जगदभूत।
इदानीमस्माकं पटुतरविवेकांजनद ाां
समीभूता त्रिभुवनमपि ब्रह्ममनुते ।।12

उपनिशद् इहलौकिक सम्पूर्ण प्रकार के भोगों को भोगने की आज्ञा देता है। मनुश्य को विवाह करके सन्तान उत्पन्न करने की आज्ञा देता है। भाक्ति प्राप्त करके राज्य प्राप्त करने, उपभोग करने की आज्ञा देता है किन्तु इन सभी के साथ एक भार्त लगा देता है कि मनुश्य इन प्राप्त भोग पदार्थों को ई वर का समझकर त्यागभाव से भोग करे, क्योंकि प्रत्येक पदार्थ, राज्य, धनादि ई वर प्रदत्त है। जैसे कोई व्यक्ति किसी भी नगर पार्कों में विनोदार्थ करने की दृश्टि से जाता है और कुछ समय वहाँ बैठकर, घूमकर, विनोद की अनुभूति करके वहाँ की समस्त वस्तुओं को छोड़कर चला आता है। वहाँ की स्थित समस्त वस्तुओं से तनिक भी ममत्व नहीं करता। इसी प्रकार योगिराज भर्तृहरि भी सांसारिक समस्त सस्तुओं से ममत्वहीन हो जाने की आज्ञा देते है –

भोगे रोगभयं कुलच्युतिभयं वित्ते नृपालाद्भयम्
माने दैन्यभयं बले रिपुभयं रुपे जरायाभयम्।
भाास्त्रे वादभयं गुणे खलभयं काये कृतान्ताद्भयम्
सर्वे वस्तु भयान्वितं भुवि नृणां वैराग्यमेवाभयम्।।13

अर्थात– जैनद र्न पूर्ण विरक्ति का मार्ग द र्ाता है। चार्वाक केवल सांसारिक सुख को ही महत्त्व देता है। बौद्धद र्न मध्यम प्रतिपदा सिद्धान्त का अनु ारण करता है। भर्तृहरि के भातकत्रय के अध्ययन से विदित होता है कि इन्होने प्रवृतिमार्ग की अपेक्षा निवृतिमार्ग की प्रधानता को स्वीकार किया है। भर्तृहरि के जीवनवृत्त को अध्ययन करने से भी पता चलता है कि भर्तृहरि एशणात्रय अर्थात् पुत्रैशणा, वित्तैशणा तथा लोकैशणा में रमण करने वाले थे किन्तु एक घटना से राजकार्य त्याग दिया। ऋशि जीवन को अपना लिया। तपस्यानन्तर भर्तृहरि ने नीति ातक, श्रृंगार ातक तथा वैराग्य ातक की रचना किया। यह भातकत्रय काव्य मानव जीवन के स्थूलतया तीन अवस्थाओं अर्थात् वाल्यावस्था, युवावस्था तथा वृद्धावस्था का माध्यम है। नीति ातक बाल्यावस्था के लिए, श्रृंगार ातक युवावस्था के लिए तथा वैराग्य ातक वृद्धावस्था के लिए प्रासंगिक है। इसमें नैतिकमूल्य, सांस्कृतिकमूल्य, आध्यात्मिकमूल्य, पर्यावरणीयमूल्य, दे ा एवं राश्ट्रभक्तिमूल्य, व्यावहारिकमूल्य, सात्विकमूल्य सहित मानवीय–मूल्य को समावे ा किया गया है। इसके माध्यम से व्यक्ति सत्य की खोज के लिए प्ररित होता है।

*****

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. Dr. Radha Krishan Foreward to 2500 years of Buddhism, Page -01
2. Buddhas repeated instruction to his followers was to Puersue practicals methods in order to arrive at hte truth and nat to distract the mselves with acalemic speculatious about the beyound the ultimate.
   Dr. Nalinaksha Dutt - The Age of Imperial Unity, P-370
3. ि ाक्षा तथा मानव मूल्य– डॉ0 बी0एस0 डागर– हरियाणा साहित्य अकादमी पंचकूला, पृ0 सं0–11
4. ई ावास्योपनिशद्– भलोक संख्या – 1
5. धम्मपद, 4 / 5
6. संयुक्तनिकाय, धम्मचक्कपवत्तनसुत्त, 2 / 9
7. संयुक्त निकाय, 29 / 3
8. उदानसुत्त–10
9. मत्स्यपुराण, अध्याय–114
10. डॉ0 कैलास नाथ द्विवेदी कृत 'कालिदास की कृतियों में भौगोलिक स्थलों का प्रत्यभिज्ञान–पृ0सं0–108
11. भर्तृहरिकृत नीति ातकम्– व्याख्याकार– हरिदास वैद्य – पृ0सं0– 21
12. भर्तृहरिकृत श्रृंगार ातक– भलोक सं0– 101
13. भर्तृहरि कृत वैराग्य ातक– भलोक सं0–